सोच समझ



नव जनवाचन आंदोलन

विज्ञान वस्तुओं, पदार्थों, पृथ्वी, ब्रह्माड को चलाने वाले नियमों का नाम है। क्या विज्ञान मनुष्य की तबियत या इच्छाओं पर अंकुश लगाता है? यह पुराना सवाल है। इस पर नई रोशनी डालती है यह किताब।











भारत ज्ञान विज्ञान समिति

सोच समझ

विज्ञान और उन्मुक्तता

डी.डी. कोसांबी





विज्ञान और उन्मुक्तता



भारत ज्ञान विज्ञान समिति

नव जनवाचन आंदोलन

इस किताब का प्रकाशन भारत ज्ञान विज्ञान समिति ने 'सर दोराबजी टाटा ट्रस्ट' के सहयोग से किया है। इस आंदोलन का मकसद आम जनता में पठन-पाठन संस्कृति विकसित करना है।



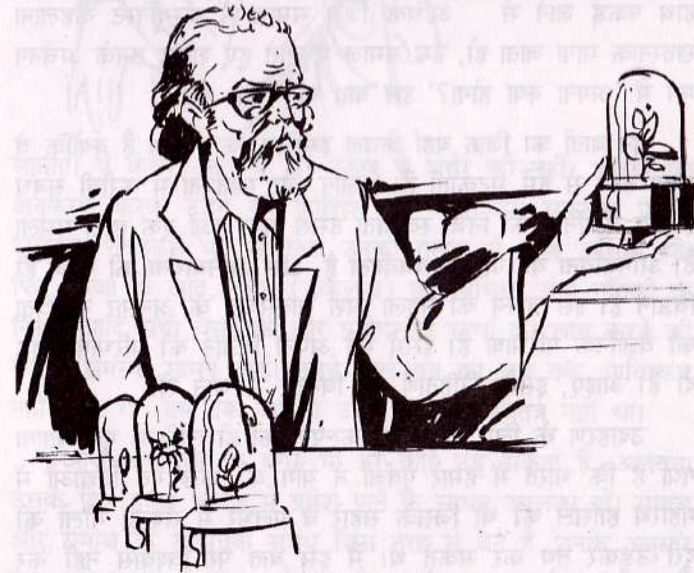
विज्ञान और उन्मुक्तता डी.डी. कोसांबी	Vigyan Aur Unmuktata D.D. Kosambi
हिंदी अनुवाद संध्या पेडनेकर	Hindi Translation Sandhya Pednekar
पुस्तकमाला संपादक तापोश चक्रवर्ती	Series Editor Taposh Chakravorty
कॉपी संपादक कंचन शर्मा	Copy Editor Kanchan Sharma
रेखांकन धीरज सोमवंशी	Illustration Dhiraj Sowmbasi
कवर एवं ग्राफिक्स जगमोहन	Cover & Graphics Jagmohan
प्रथम संस्करण नवंबर, 2007	First Edition November, 2007
सहयोग राशि 15 रुपये	Contribuation Rs. 15
मुद्रण आकृष्ट ग्राफिक्स गुड़गांव	Printing Aakrisht Graphics Gurgaon
सौजन्य से मार्क्सिस्ट्स डॉट ऑर्ग	Courtesy Marxists.org

Publication and Distribution

Basement of Y.W.A. Hostel No. II, G-Block, Saket, New Delhi - 110 017
Phone : 011 - 26569943, Fax : 91 - 011 - 26569773
Email : bgvs_delhi@yahoo.co.in, bgvsdelhi@gmail.com
website: www.bgvs.org
BGVS NOVEMBER 2007 2K 1500 NJVA 0086/2007

विज्ञान और उन्मुक्तता

1949 में वैज्ञानिक स्वतंत्रता को लेकर अमेरिकी वैज्ञानिक और बुद्धिजीवी बहुत चिंतित थे, यह मैंने देखा। उस दौरान वैज्ञानिक स्वतंत्रता के मायने उनके मतानुसार ये थे कि, मदद भले ही बड़े उद्योगों, युद्ध-विभागों या विश्वविद्यालयों से– एक या अधिक स्रोतों से ली जाए– लेकिन वैज्ञानिकों को अपनी पसंद का काम करने की छूट मिलनी चाहिए।



वे ऐसे समाज में रहते थे जिसकी सोच थी कि संगीतज्ञ की तनख्वाह देने वाले को उससे अपनी पसंद की धुन बजवाने का पूरा अधिकार होता है। इसलिए उनको यह अनुमान नहीं था कि विज्ञान अब उस पुराने जमाने की तरह 'स्वाधीन' नहीं रह गया था, जब उत्पाद का उद्योग अभी तकनीकी विकास के शुरुआती स्तरों में ही बढ़ रहा था– और जिस जमाने में महत्वपूर्ण खोज करने वाले वैज्ञानिकों को तार के टुकड़ों, रसायनों और जगह-जगह से अलग-अलग किस्म के नमूने इकट्ठे करने जैसे कार्यों में लगे व्यस्त, लेकिन सुरक्षित व्यक्ति माना जाता था। आज का वैज्ञानिक बहुत धनी और भरपूर दोहन करने वाली समाज व्यवस्था का अंग है। आज वह फराडे की तुलना में कहीं ज्यादा आराम से जी रहा है, लेकिन साथ ही उस पर खतरनाक या दार्शनिक कल्पनाओं को टालकर पेटेंट करने लायक या विज्ञापन करने योग्य काम नियमित रूप से करने का दबाव है। शुरू में जिनका मैंने जिक्र किया, वे परिणामतः इस योजनाबद्ध समाज में वैज्ञानिक स्वतंत्रता की कमी को लेकर काफी चिंतित थे। जालसाजी या चोरी करते हुए रंगे हाथ पकड़े जाने से अधिक जिस समाज में कम्युनिस्ट कहलाना खतरनाक माना जाता हो, उस समाज में जीते हुए शायद उनके अचेतन मन में 'अपना क्या होगा?' इस बात की चिंता थी।

इन बातों का जिक्र यहां केवल इसलिए किया गया है क्योंकि वे मुख्य तथ्य से हमें भटकाती हैं। विज्ञान और स्वतंत्रता में करीबी संबंध है और वैज्ञानिक की निजी स्वतंत्रता उससे जुड़ा हुआ एक छोटा मसला है। **अनिर्वायता की पहचान स्वतंत्रता है, और अनिवार्यता की खोज ही विज्ञान है।** इस वाक्य का पहला अंश मार्क्सवाद के अनुसार स्वतंत्रता की वैज्ञानिक परिभाषा है। इसमें मैंने अपनी विज्ञान की परिभाषा जोड़ दी है। आइए, इसके निहितार्थ को विस्तार से जान लें।

उदाहरण के लिए, उड़ने की कल्पना को ही लीजिए। मुझे बताया गया है कि भारत में हमारे पूर्वजों ने योग की कुछ गूढ विद्याओं में महारथ हासिल की थी जिसके सहारे वे पलभर में सैंकड़ों मीलों की दूरी उड़कर तय कर सकते थे। मैं इस बात पर विश्वास नहीं कर



सकता। ये केवल कल्पना की उड़ान है शरीर की नहीं। पंछियों का अनुकरण करके उड़ने की कोशिश को बहुत कम सफलता मिली, अलबत्ता ग्लाइडर्स की सफलता उनकी तुलना में कुछ अधिक थी। फिर, ऊर्जा के स्रोत, नोदन (ढकेलना) की विधियां, वायु-गतिकी के नियम आदि सभी वैज्ञानिक और प्रयोगशील सत्यों को लागू करने की कठिन समस्या सामने आई। उड़ने वाले यंत्र का जब तक आविष्कार नहीं हुआ था, तब तक आदमी उड़ने के लिए स्वतंत्र नहीं था।

आज योगविद्या के बगैर भी हर कोई उड़ सकता है, अलबत्ता उसके पास हवाई जहाज में प्रवेश पाने के साधन उपलब्ध हों। समाज और समाज के सांपत्तिक संबंध जिस तरह से बने हैं, उनके अनुसार यह तभी संभव है जब उसे या तो हवाई जहाज खरीदना होगा या



जिसने हवाई जहाज खरीदा हो, वह उसे उसमें बैठने की अनुमति दे। अंततः उड़ने वाले व्यक्ति के पास पैसा है या नहीं यही प्रश्न, यानी उत्पादन के साधनों पर जरूरी नियंत्रण का प्रश्न उपस्थित होता है। सिद्धांततः अपनी पीठ पर दो पंख उगाकर पंछियों की तरह उड़ने से या योगी बनकर इच्छाशक्ति के सहारे वातावरण में उड़ने से उसे कोई नहीं रोकता। हालांकि हम सब की यह आजादी मात्र छलावा है। असली उड़ान भरने के लिए व्यक्ति को इससे अधिक संभव और ठोस तकनीकी साधन जुटाने की जरूरत पड़ती है।

एक इससे भी आसान उदाहरण लीजिए— नजर या दृष्टि का। पांच सौ वर्ष पूर्व अति-ह्रस्व या अति-दीर्घ दृष्टि को अंधेपन के विभिन्न रूपों में गिना जाता था और भाग्य में लिखी, या स्वर्ग से प्राप्त वेदना के रूप में मान लिया जाता था, या फिर बुढ़ापे का साथी मान लिया जाता था। ऐसे लोगों को फिर से सामान्य दृष्टि उपलब्ध कराने के लिए ऐनक का आविष्कार (औपटिक्स) होना जरूरी था और इस जरूरत ने पैदा किया आज का दृष्टि विज्ञान, यानि आंखों की रचना के

बारे में पूर्ण जानकारी, कांच की उसके रसायनों के साथ जानकारी, लेंस-ग्राइंडिंग तकनीक, कारखाने और फैक्टरियां। आज भी ऐसे कई लोग हैं जिनके दृष्टिदोष ऐनक के सहारे आसानी से कम किए जा सकते हैं। कानूनन वे ऐनक पहनने के लिए स्वतंत्र भी हैं, लेकिन केवल पैसों के अभाव में वे ऐसा नहीं कर पाते। भारत में जिन्हें ऐनक की जरूरत है लेकिन जिनके पास ऐनक नहीं है, ऐसे लोगों की संख्या लाखों में हो सकती है।

इन उदाहरणों के सहारे हम कह सकते हैं कि वैज्ञानिक परीक्षणों के सहारे ही अनिवार्यता को पहचाना जा सकता है। साथ ही, इन परीक्षणों से हम तकनीकी स्तर को अलग नहीं कर सकते। अंततः हम कह सकते हैं कि हमारी सामाजिक रचना तकनीकी स्तर से बेहद करीबी ढंग से जुड़ी हुई है, लेकिन वह सामाजिक अनिवार्यता पैदा करके ही व्यक्ति की स्वतंत्रता को उसके अनुरूप ढाल लेती है।

विज्ञान के बारे में कुछ वक्तव्य निर्विवाद हैं, जैसे कि— विज्ञान के पास एकमात्र कसौटी है— वैधता की एवं प्रत्यक्ष के सबूत की, जो व्यावहारिक नहीं है तो वह विज्ञान भी नहीं है। पदार्थ के गुणधर्म की प्रत्यक्ष पड़ताल विज्ञान है और इसलिए विज्ञान को भौतिकवादी कहा जाता है। प्रयोग करने वाले व्यक्ति से वैज्ञानिक परिणामों का कोई संबंध नहीं होता, वे स्वतंत्र होते हैं। इस अर्थ में समान रूप से किए गए प्रयोगों के परिणाम एक जैसे होते हैं। और अंत में, कारणों और परिणामों की खोज में विज्ञान संचयी है— विज्ञान का इतिहास विज्ञान ही है। हर वैज्ञानिक खोज, फिर उसका महत्व चाहे कितना भी क्यों न हो, मानवी वैज्ञानिक ज्ञान के भंडार में समा जाता है, ताकि उसे बार-बार उपयोग में लाया जा सके।

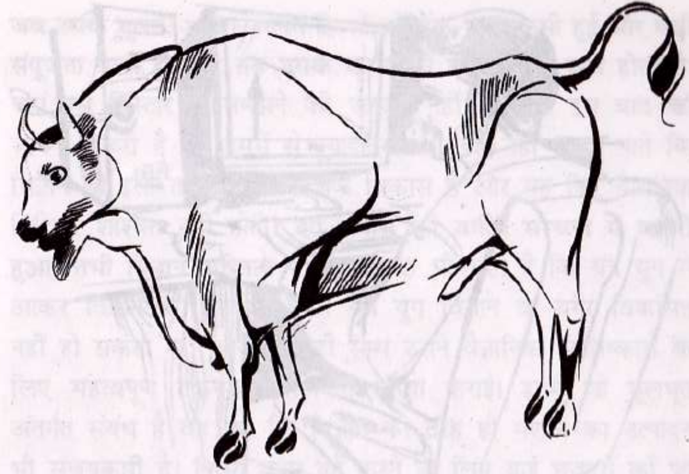
स्कूली बच्चे भी गैलीलियो के प्रयोगों को दोहरा सकते हैं। प्रथम वर्ष में पढ़ने वाले कॉलेज के छात्र न्यूटन से अधिक गणित जानते हैं। पढ़ाई करते हुए इन युवा छात्रों को लगभग समान बौद्धिक प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है, और जो गैरजरूरी है उसे हटाकर आधुनिक

दृष्टिकोण से दोहराना पड़ता है। लेकिन इसके लिए उन्हें गैलीलियों के सिद्धांत नहीं पढ़ने पड़ते और न ही उनकी किताब 'प्रिंसिपिया'।

यही विज्ञान और कला का मुख्य भेद है। आधुनिक चित्रकार को प्रागैतिहासिक अल्टामीरा की गुफाओं के जंगली सांडों के चित्रों का अध्ययन नहीं करना पड़ता और न ही किसी आधुनिक कवि को कालिदास का काव्य पढ़ने की जरूरत होती है। दूसरी तरफ, हम हर युग की कला और साहित्य का आस्वाद ले सकते हैं क्योंकि वे अपने उत्तराधिकारियों में वैज्ञानिक शोध की तरह सम्मिलित नहीं होते। सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से उनमें उत्तरजीविता के मूल्य होते हैं, अपक्षय का अभाव होता है जोकि विज्ञान में नहीं होता। लेकिन, सभी सौंदर्यशास्त्रीय परिणामों में उत्तरजीविता मूल्य नहीं होता। शासक वर्ग अपने काल के कपड़ों में जिसे जरूरी समझता है वहीं फैशन पलक झपकते पुराना पड़ जाता है, बेतुका और हास्यास्पद लगने लगता है।

अपना दूसरा वक्तव्य भी मैं स्पष्ट करता हूं। जब दो चित्रकार एक ही दृश्य का चित्र बनाते हैं, तब उनके बनाए चित्र काफी अलग-अलग तरह के होते हैं लेकिन एक ही दृश्य जब दो लोग बटन दबाकर अलग-अलग कैमरों में कैद करते हैं तब उन दृश्यों में फर्क नहीं होता। यज्ञ का फल अनुष्ठाता की योग्यतानुसार मिलता है और केवल राजा, वैद्य, शमन या ब्राह्मण के पास ही वह शक्ति या अधिकार होते हैं जिनके सहारे केवल वे ही मानव जाति के भले के लिए प्रयत्न कर सकते हैं। विज्ञान हमें बताता है कि ये फायदे काल्पनिक होते हैं। जमीन की उर्वरता यज्ञों से नहीं बल्कि कृषि की कुछेक तकनीकों और कुछ रासायनिक उर्वरकों आदि के सहारे पाई जा सकती है। साथ ही इन रसायनों और तकनीकों के प्रयोग का असर इस बात पर कतई निर्भर नहीं करता कि उनका उपयोग कौन कर रहा है।

मैंने जान-बूझ कर ये उदाहरण दिए हैं क्योंकि किसी समय किए जाने वाले कर्मकांडों की जगह आज वैज्ञानिक परीक्षणों ने ली है। आज हम जिन्हें वैज्ञानिक सिद्धांत कहते हैं, उनके लिए किसी जमाने में



केवल प्राचीन कर्मकांडों के उपचार ही उपलब्ध थे। लेकिन प्राचीन तकनीक भी सही थी। भारत में आज भी माहवारी को लेकर वर्जना कायम हैं, हालांकि औद्योगिकता की भाग-दौड़ में हर चीज की तरह यह भी मतलब खोकर बड़े शहरों से लोप हुई है। हमारे कर्मचारी साल-भर में एक दिन अपने औजारों की पूजा करते हैं और इस सुंदर प्रथा का चलन पुरातन समय से जारी है। लेकिन लेथ-मशीनें, टर्बाइंस, बिजली से चलने वाली मोटरें और रेलवे ने यह दिखा दिया है कि कर्मचारी के 'मन' का कोई भी हिस्सा उसके औजारों में नहीं बसता।

बाजार में मैंने देखा है कि सुबह, ग्राहक को सब्जी बेचने से पहले सब्जीवाला अपने वजन के कांटे के सामने हाथ जोड़ता है, देवी भवानी का वंदन करता है। शेयर मार्किट के सटोरिए ज्योतिषियों पर बड़ी रकम खर्च तो करते हैं लेकिन बाजार की कीमतों पर भी पैनी नजर रखते हैं। वे शेयर्स, स्टॉक, बाँड, आदि के दामों में आने-वाले उतार-चढाव के चलन का तथा अन्य ऐसी वित्तीय बाजीगरी का खासतौर पर ध्यान रखते हैं जिसका ज्योतिषियों की किताबों में कहीं जिक्र नहीं होता है। आज भी सूर्यग्रहण के समय नदी में स्नान करने



वाले गर्व के साथ कह सकते हैं कि उनकी प्रार्थनाएं सफल हुई हैं; सूर्य को निगलने वाले राक्षस के पेट से सूरज मुक्त हुआ है। लेकिन हमारे पंचांग में शामिल ग्रहण के हर मिनट का सिद्धांत पश्चिम की खगोल पद्धति के अनुसार शामिल हुआ है, जिससे कि अब लगभग लुप्तप्राय हुई इन प्रथाओं में लोग विश्वास नहीं करते।

विज्ञान में सिद्धांत और व्यवहार को अलग नहीं किया जा सकता। इसका यह मतलब नहीं कि वैज्ञानिकों ने कभी गलत सिद्धांत बनाए ही नहीं, बल्कि यह कि वे सिद्धांतों के जरिए सत्य के अधिक से अधिक करीब आते गए, यह जानते हुए कि संपूर्ण या अंतिम सत्य जैसा कुछ नहीं है। इसकी सीधी-सादी वजह यह है कि वस्तु के गुण अनंत और अक्षय हैं। इसके विपरीत, शास्त्रों के अनुसार, कर्मकांडों के साथ कोई प्रयोग करना नहीं चाहता। जितनी पुरानी मान्यता, उतनी पक्की उसकी पकड़ होगी।

आदिम समाज जब वर्गीय संरचना में विभाजित हो जाता है, यानि

जब उसके मूलतः अलग-अलग हिस्सों को एक-साथ कसी हुई और बड़ी संपूर्णता प्राप्त होती है तब उसके कर्मकांडों से धर्म का जन्म होता है। यहां इसे विस्तार से समझने की जरूरत नहीं हैं। यहां इस बात को जानना जरूरी है कि हममें से ज्यादातर लोग यह नहीं समझ पाते कि विज्ञान भी इसी तरह का सामाजिक विकास है और यह कि, वैज्ञानिक विधियां शाश्वत नहीं होती। **नए समाज की वर्गीय संरचना में जरूरी हुआ, तभी विज्ञान अस्तित्व में आया।** यह भी सही है कि यंत्र युग में आकर विज्ञान की पहचान बनी। यंत्र युग विज्ञान के बगैर विकसित नहीं हो सकता था। और साथ ही साथ उसने वैज्ञानिक आविष्कारों के लिए महत्वपूर्ण तकनीकी सहायता मुहैया कराई। इनमें जो मूलभूत अंतर्गत संबंध है वह यह कि विज्ञान की तरह ही मशीन का उत्पादन भी संचयकारी है। किसी काम को करने के लिए कई मजदूरों को जो समय लगता है उसे मशीन अपने में समा लेती है। फिर भी, जैसा कि हम सब जानते हैं कि आधुनिक विज्ञान का जन्म मशीन युग के आने से पहले हुआ है। उसका उद्देश्य भी वही था– लोगों की नई सामाजिक जरूरतें पूरी करना। **इस तरह हम कह सकते हैं कि आधुनिक विज्ञान पूंजीवादी संस्कृति की देन है।**

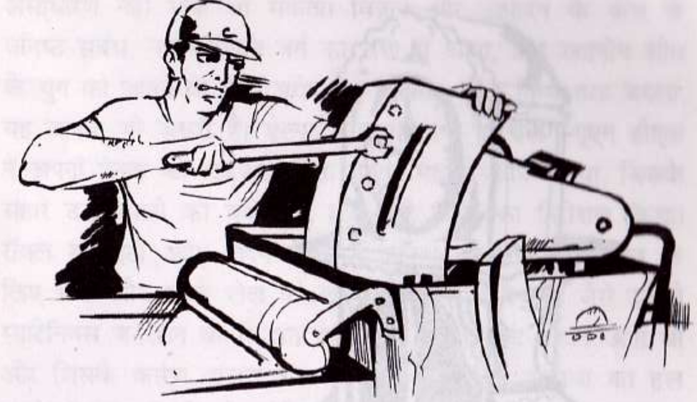
सिद्धांत को तकनीक से अलग करने की विशेषता को विज्ञान की प्रमुख उपलब्धियों में गिनाया जा सकता है, खासकर उत्पादक तकनीक से। अपने गांव के मजदूरों को देखें तो हम पाएंगे कि बिल्कुल निम्न स्तर के साधनों के सहारे भी वे बेहतरीन काम प्रस्तुत करते हैं क्योंकि उस कारीगर को उस विशिष्ट साधन को चलाने में महारत हासिल होती है। वह उसे अपने व्यक्तित्व का विस्तार ही बना लेता है। वह एक समय में एक ही तरह का औजार चलाने में सक्षम है लेकिन उसके उत्पाद का मानकीकरण नहीं हुआ है। अगर वह एक ही तरह के दो जटिल उपकरण बना भी लेता है तो उसके पुर्जे एक-दूसरे के साथ चल नहीं पाते। उनके पुर्जे आपस में बदले नहीं जा सकते। वैज्ञानिक प्रयोग करने वालों का वैज्ञानिक प्रयोगों से जुड़ाव जिस तरह नहीं होता उसी तरह आधुनिक कारखानों के लेथ या लूम का उसे

चलाने वाले से संबंध नहीं होता, बशर्ते इन्हें चलाने वाले मजदूर के पास, मशीन को बिना नुकसान पहुंचाए, चलाने की जानकारी होना जरूरी है।

गांव के बुनकर और उसी गांव के कुम्हार के उदयकाल और सामाजिक स्तर में जमीन-आसमान का फर्क होता है, जबकि मशीन पर काम करने वाला मजदूर बड़ी आसानी से अपना कार्यक्षेत्र बदल सकता है। एक हस्तशिल्पी के लिए सिद्धांत उसके औजारों से अलग नहीं होते। उसका ज्ञान उंगलियों के जरिए प्राप्त होता है और उसी के जरिए उसकी अभिव्यक्ति भी होती है। परिणामस्वरूप, इस तरह के ज्ञान का प्रसार धीमा होता है। शिल्पकार अपने छोटे-छोटे शिल्पी-संघ बना लेते हैं। ज्यादा कारीगरों को तैयार करने के लिए लंबा प्रशिक्षण आवश्यक होता है। इनसे उनकी संख्या और उनसे निर्मित उत्पादन सीमित हो जाता है।

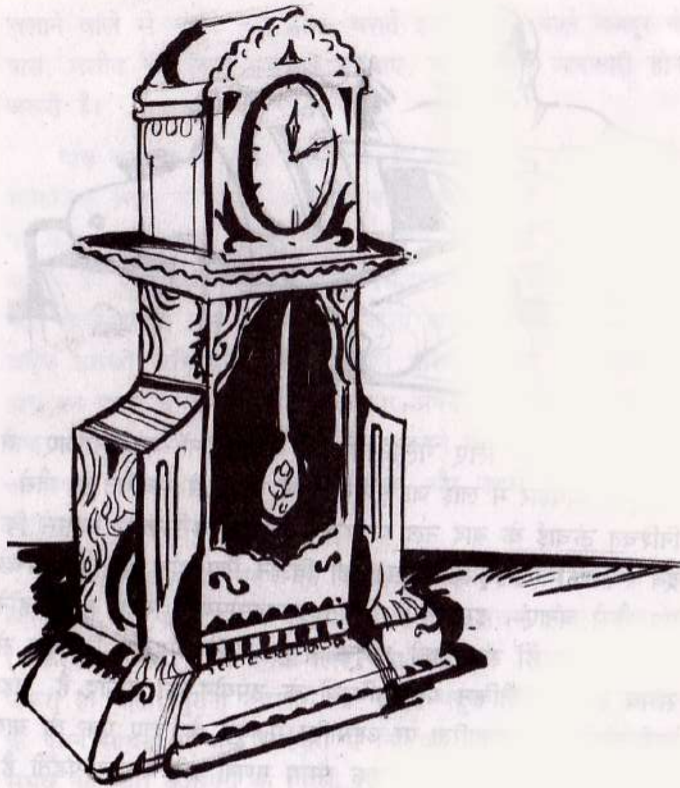
नवजागरणकालीन यूरोप की स्थिति ऐसी ही थी। जब वहां के बड़े व्यापारियों के पास पर्याप्त मात्रा में धन का संचय होता जाता था (जरूरत से ज्यादा), तो उनके लिए पैसा बढ़ाने के लिए तरीके ढूंढना जरूरी हो जाता। पुरानी सूदखोरी का दायरा बहुत सीमित था। उत्पादन के पुराने साधनों से जुड़े कर्जदारों से निश्चित लाभ से अधिक वसूली संभव नहीं थी। कारीगरों के गिरवी रखे हुए औजारों को जब्त करने से उसके और उसके परिवार के लिए भुखमरी की स्थिति पैदा हो सकती थी। परंतु सूदखोर के लिए, धातु और लकड़ी से बने यह औजार अनुत्पादक थे। इसलिए उसे एक ऐसे नए वर्ग की जरूरत थी जो लंबे प्रशिक्षण को टालकर कुशलतापूर्वक चीजों का उत्पादन कर सके और मजदूरी के अतिरिक्त श्रम का लाभ उठा सके। इस तरह, एक सूदखोर पूंजीपति बन जाता है, और कारीगर सर्वहारा।

अब ऐसे व्यवसायों के प्रबंधन के लिए उत्पादन के साधनों का प्रयोग खुद न करने वाले प्रबंधन वर्ग को फायदा पहुंचाने वाला एक व्यावहारिक सिद्धांत होना भी जरूरी है। विज्ञान का काम भी यही होता



है। उदाहरण के लिए गैलीलियो के अनुसंधानों को लीजिए, वे बिल्कुल व्यवहार में लाई जा सकने वाली चीजों से संबंधित हैं। जैसे– निश्चित ऊंचाई के बाद नल पानी क्यों नहीं खींच सकते? जिससे कि द्रव स्थैतिकी (हाइड्रोस्टेटिक्स) का विज्ञान पैदा होता है, और अच्छे पंप कैसे बनाएं– इस जैसी नितांत व्यवहारोपयोगी बातों पर उन्होंने विचार किया है। समय की अचूक गणना उनके पेंडुलम निरीक्षण से संभव हो पाई। लेकिन यह फैक्ट्रियों के उपयोग का उत्पाद है, जहां कई लोगों को सहकारिता पर आधारित मजदूरी के लिए एक के बाद एक लाना पड़ता है, वहां अचूक समय गणना की जरूरत पड़ती है। कुटीर उद्योगों में इसकी जरूरत नहीं पड़ती।

गैलीलियो ने बार-बार भविष्यवाणियां की जो अक्सर गलत ही साबित हुईं। उनका खगोलविज्ञान क्रांतिकारी माना जाता है लेकिन वह इस संदर्भ में कि उन्होंने अपनी दूरबीन स्वर्ग की तरफ मोड़ी और वहां उन्हें जो कुछ दिखाई दिया वह उन्होंने सीधे-सादे ढंग से व्यक्त किया। उनके कारण चंद्र में छिपे मानव की जगह पहाड़ों ने ली। शासकवर्ग और उनकी सेवा में रत चर्च ने ब्रह्मांड की जिस व्यवस्था को निश्चित मान लिया था उसे गैलीलियो के खगोलविज्ञान ने डिगा दिया था, क्योंकि ब्रह्मांड की व्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था भी



हिलने की संभावना लोगों के मन में आने लगी थी, और ऐसा करना किसी भी व्यक्ति के लिए खतरे से खाली नहीं था।

विज्ञान प्रयोगों की जानकारी का संग्रह मात्र नहीं है। जब तक किसी विवादास्पद सिद्धांत को सुलझा नहीं लेता, तब तक विज्ञान का कोई प्रयोग महान नहीं होता। और कोई महान सिद्धांत जब तक प्रयोगों की उलझाने वाली जानकारी की व्याख्या नहीं करता या बिना प्रयोग किए ही उनके परिणामों का पूर्वानुमान नहीं देता तब तक उसे

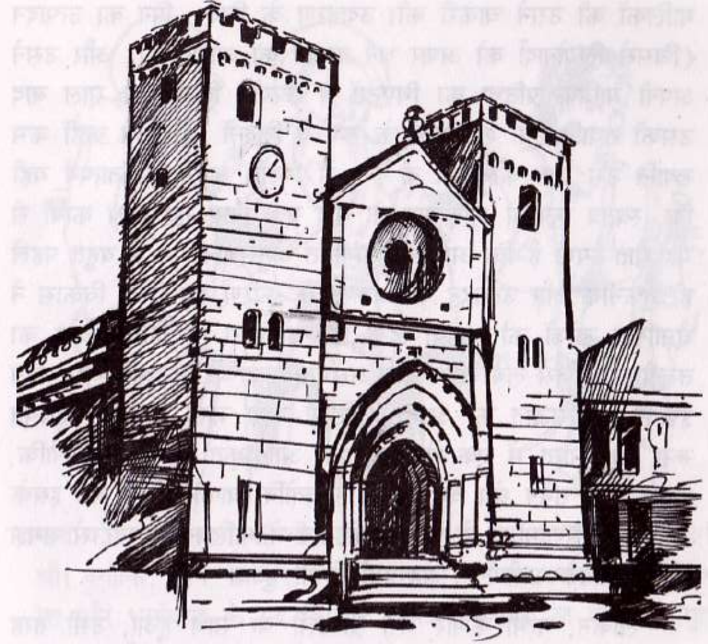
असाधारण नहीं माना जा सकता। विज्ञान और उत्पादन के बीच के घनिष्ठ संबंध, नए पूंजीपति वर्ग का सत्ता में आना, और स्थानीय शोध के युग को जानने के लिए यूरोप का वैज्ञानिक केंद्र किस तरह बदला, यह जानना भी जरूरी है। डेल्फ्ट नगर के एक द्वारपाल ल्यूएन होएक ने अपनी ऐनक को तोड़कर पहला बेहतर माइक्रोस्कोप बनाया, जिसके सहारे उसने पानी की बूंदों और छोटे-छोटे कीटों का निरीक्षण किया। रॉयल सोसाइटी ऑफ लंदन ने अपने सचिव को उससे मुलाकात के लिए भेजा और उसके लेख को छापा। बिल्कुल उसी तरह जैसे उन्होंने स्पांटेनियस जनरेशन के सिद्धांत के विरोध में रेडी का कथन छापा था और जिसके कारण अनाज भंडारण की व्यावहारिक समस्या का हल ढूंढने में मदद मिली थी। लेकिन, जो पहले छापता है उसे उस बात का श्रेय देने की कल्पना नई थी। न्यूटन तक को भी अपने अनुसंधानों की जानकारी सहज रूप से देना पसंद नहीं था। इसी तरह, हम जितना उनसे पहले के समय को देखें, उतना पता चलेगा कि किसी भी महत्त्वपूर्ण जानकारी को स्वत्वाधिकार में गुप्त रखने की प्रवृत्ति ज्यादा दिखाई देती है।

सामाजिक बन चुकी उत्पादन प्रणाली से ही इस प्रवृत्ति में बदलाव आ सकता है। अलबत्ता साधनों की तकनीक और उत्पादन के स्तर पर निजी मिल्कीयत अभी भी एकस्वाधिकार (पेटेंटों), उत्पादक संघों (कार्टेल), स्वत्वाधिकार पर जोर देती है। अब, जिस शतक में दो विद्रोह हुए और जिनके कारण इंग्लैंड में पूंजीपतियों के हाथों में सत्ता आई, उसी ने न्यूटन को जन्म दिया। क्या यह महज एक संयोग था? जिस फ्रांसीसी विद्रोह ने फ्रांस से सामंतवाद के कचरे को साफ कर किया, उसी ने लागरंगे, लैपलेस, अंपीयर, बर्थलोट जैसे यूरोप विरोधी वैज्ञानिक फ्रांसीसियों को कैसे जन्म दिया? पूंजीपतियों के साथ उनका उदय हुआ और वे नेपोलियन को भी मात दे गए। जर्मनी के महान वैज्ञानिक गॉस का आविर्भाव भी जर्मनी में पूंजीपतियों के सत्ता में आने के बाद ही हुआ और वे अकेले नहीं थे।

इन सभी बातों को हम महज संयोग कहकर टाल दें, विज्ञान के इतिहास को सौभाग्यपूर्ण संयोग की कड़ियां मान लें तो विज्ञान की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि को टालने जैसी हास्यापद स्थिति में हम पहुंच जाएंगे। वैसे, विज्ञान खुद अपना इतिहास है और हमेशा संदेहास्पद संयोगों के पीछे छिपे कारणों को ढूंढते हुए ही विज्ञान की हमेशा प्रगति हुई है।

इससे आगे जाकर मैं यह भी कहना चाहूंगा कि ग्रीक विज्ञान आधुनिक अर्थ के अनुसार विज्ञान था ही नहीं, फिर भले उसकी कितनी भी तारीफ क्यों न की गई हो और नवजागरणकाल में उसकी तर्काधारित विधियों से भले चाहे जितनी प्रेरणा ली गई हो, था तो वह छद्मविज्ञान ही। खोजों से निकली तकनीक के सहारे सभी तथ्यों को युक्ति में बांधना ग्रीक विज्ञान का उद्देश्य था। वह भी एक सामाजिक अनिवार्यता थी, क्योंकि तब के वर्गीकृत समाज में गुलाम काम करते थे और उनका अस्तित्व प्राकृतिक नियमों के अनुसार सही माना गया था– एक ऐसी अनिवार्यता जिसका प्रतिबिंब उस समय के वैज्ञानिक दृष्टिकोण में देखा गया।

इस तरह, यह कल्पना निराधार साबित होती है कि विज्ञान समस्याओं के बारे में अपने ही मन के किसी कोने में केवल वैज्ञानिक तरीके से सोचने वाले केवल कुछ एक प्रतिभाशाली व्यक्तियों की उपज है। हर समाज में और हर युग में प्रतिभाशाली व्यक्ति होते हैं लेकिन जिस तरह विचार के लिए वे भाषा का चुनाव करते हैं, उसी तरह उनकी प्रतिभा का उपयोग भी बहुत कुछ उस समय के वातावरण पर निर्भर करता है। बिना हिले-डुले रहना जितना शरीर के लिए असंभव है उतना ही बिना विचारों के रहना मन के लिए असंभव है। भारत में आज भी ऐसे लोग हैं जो शंकर और रामानुज के दर्शन के सापेक्ष गुणों के बारे में चिंतन करते हैं। हालांकि इन विचारों के सहारे इन दोनों संस्थापकों की तरह निपुणता हासिल करने की उनकी मंशा नहीं होती। मैं अगर न्यूटन के प्रयोगों को दोहराऊं तो मुझे उनमें सफलता मिलेगी, वही परिणाम हासिल होंगे लेकिन, निश्चय ही मुझे



प्रकाश तत्व की खोज करने वाले वैज्ञानिक का श्रेय नहीं मिलेगा।

इसीलिए, महत्वपूर्ण बात यह है कि समाज के लिए किसी वैज्ञानिक खोज का महत्त्वपूर्ण होना उसकी उपयोगिता पर ही निर्भर करता है। इसीलिए, आज के कॉलेज के छात्रों को न्यूटन के समकालीनों से अधिक गणित की जानकारी होने के बावजूद उनमें से कोई भी विलक्षण प्रतिभासंपन्न व्यक्ति नहीं माना जाता। इसीलिए, खोज एक बार होती है और उसका अनुकरण उपयोगी तकनीक बन जाता है। खोज जब तक समाज के लिए जरूरी नहीं होती, तब तक उसका कोई महत्व नहीं होता और सामाजिक जरूरत कई बार सत्ताधारी वर्ग की सहमति पर निर्भर करती है।

लियोनार्दो-दा-विंची की 500वीं जयंती मनाई गई? जो इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। उसके काम में रूचि न रखने वाले सामंती

मालिकों की उसने चाकरी की। उदाहरण के लिए– पिन का उत्पादन (जिससे लियोनार्दो को अपार धन कमाने का आशा थी।) और उसने अपनी यांत्रिक प्रतिभा का थिएटरों में उपयोग किया। सौ साल बाद उसकी ख्याति एक शोधकर्त्ता के रूप में जितनी थी उससे कहीं कम ख्याति उसे एक कलाकार के रूप में मिली। कहने का तात्पर्य यही कि, स्वतंत्र रूप से और एक के बाद एक किए गए शोध कार्यो से यह बात स्पष्ट है कि आधुनिक संगठित अनुसंधान-युग से बहुत पहले ही तकनीक और उत्पादन की जरूरत के कारण सामाजिक विकास ने वैज्ञानिक खोजों को बढ़ावा दिया था। उदाहरण के लिए– वायु का तरलीकरण, जिसे लंबे समय तक असंभव माना जा रहा था। जिस रामन इफेक्ट के सिद्धांत को अभी अपरिपूर्ण माना जाता है, वह सोवियत रूस और भारत में एक के बाद एक आविष्कृत हुआ था। हालांकि, इसके लिए रामन श्रेय के हकदार हैं क्योंकि बाकी दुनिया जब इसके आण्विक परिणामों में ही उलझी थीं, तब वे मालिक्यूलर स्तर से समझ रहे थे। उनके प्रयोगों से यह साबित भी हुआ।

लेकिन, कभी-कभार जैसे प्रीस्टली के साथ हुआ, उसी तरह वैज्ञानिक और समाज पर प्रभुता रखने वाले वर्ग के बीच संघर्ष पैदा होता है और वह संघर्ष उस व्यक्ति और उसकी खोजों पर योग्य पहचान बना पाने के मायने में भारी पड़ता है।

यह सिर्फ बुर्जुआ के वर्चस्व वाले समाज का गुण नहीं है। मध्यकाल के दौरान, यूरोपीय लोागें का रुझान ध्यान की तरफ हुआ था। वैराग्यपूर्ण जीवन और ईश्वरीय चिंतन की ओर रुझान बढ़ गया था। इस तरह के रुझान का उस काल में बहुत आदर होता था और उसका प्रचार-प्रसार भी किया जाता था। प्रभाव बढ़ाने के लिए एकाध चमत्कार भी जोड़ दिया जाता था। लेकिन ईश्वरीय चिंतन भी समाज के वर्गीय ढांचे से मुक्त नहीं था। समाज की दृष्टि से खतरनाक चिंतन से, आदमी की जान जोखिम में पड़ सकती थी। सामंती शासक ही नहीं बल्कि आगे चलकर व्यापारी वर्ग ने भी ईश्वरीय चिंतन का, प्रोटेस्टैंटोनिज्म के रूप में इस्तेमाल किया। जिन संतों और शहीदों की ख्याति बटोरकर



चर्च की स्थापना की गई थी, परवर्ती-काल में वह नाकाफी लगने लगी थी। क्योंकि, आगे चलकर चर्च ही सामंती धन के स्वामी बने। मठाध ीश और धर्माधीश के पद विशिष्ट धनाढ्य परिवारों या परिवार समूहों का परमाधिकार बनकर रह गया।

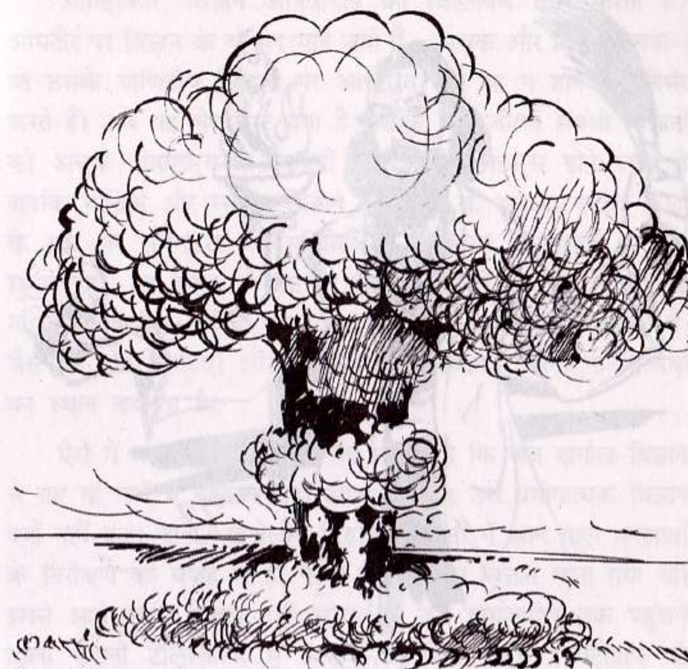
बौद्ध धर्म के साथ भी आगे चलकर यही हुआ। बार्मिसाइडस् का इतिहास, या तिब्बत पर राज करने वाले कुछ एक परिवारों का, या सिलोन (श्रीलंका) के अमीर मठों का इतिहास देखें तो इस बात का पता चलता है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और आम लोगों के संत तुकाराम की सीख का, अब मुख्यत: अपना धन बढ़ाने के लिए उपाय खोजने में, जर्जर हो चुके परमाधिकार को बनाए रखने में, एवं टैक्स बचाने के काम में उपयोग में लाया जा रहा है।

यूरोप के अमीर चर्च को अपना दावा मजबूत करने के लिए इनक्विजिशन की जरूरत थी और इसलिए उस 'पवित्र दफ्तर' को गैलिलियो के विचार खतरनाक लगे। इसलिए कॉस्टानटिनोपोल पर विजय प्राप्त करना तथा अलबिजोइस के लोकप्रिय आंदोलन को दबाने जैसे विचित्र उद्देश्यों की ओर धर्मयुद्ध का रुख मोड़ा गया। ऐसे ही स्पेन

के "सामाजिक छंटनी की सूची"–अवांछित लोगों को मरवाने की सूची– से कई आधुनिक विचारों के बारे में चर्च का रुख स्पष्ट होता है। जबकि अंतिम स्पैनिश नागरी संघर्ष ने दिखा दिया कि स्पेन के सबसे बड़े जमींदार के रूप में चर्च जनतांत्रिक सरकार के खिलाफ क्या उपाय करने की सामर्थ्य रखता है।

इसी से मिलती-जुलती **एक समानांतर धारणा यह भी बताई जा सकती है कि विज्ञान पूंजीपतियों का ईश्वरीय चिंतन है।** उत्पादन का पूंजीवादी तरीका जहां कहीं सामंती तरीके को मात देता है ईश्वरीय सोच की जगह विज्ञान को बैठा देता है। वैज्ञानिक को सन्यासी की तरह गरीब ही रहना चाहिए और जिस तरह पादरी को सामंती शासक की सभाओं में सम्मिलित किया जाता था बिल्कुल उसी तरह पूंजीपतियों की मंडली में वैज्ञानिकों को शामिल कर लिया जाता था। उनकी प्रशंसा की जाती थी। उनकी खोज पेटेंट कराने लायक भले हो, लेकिन उनकी खुद की कमाई कभी भी करोड़ों की नहीं होती थी। पाश्चर और फराडे को, उनकी खोज की बदौलत जितनी कमाई की गई, उसकी तुलना में भिखारियों को दी जाने वाली भीख की तरह मुआवजा मिला। प्रेस वाले वैज्ञानिकों की जादुई खोज को लोगों तक पहुंचा सकते हैं लेकिन उनके लिए जरूरी है कि उनकी खोज प्रेस के नवाबों को यानी शासक वर्ग को स्वीकार्य हो। और सबसे दुखदायक बात यह है कि सामंती-युग के अंतिम दौर में जिस तरह डायनों को मारने की प्रथा थी वह आज के इस ह्रासोंमुख युग में भी बरकरार है।

विज्ञान पूंजीपतियों की पैदाइश है। मगर यह जरूरी नहीं कि पूंजीपतियों के नाश के साथ विज्ञान भी नष्ट हो जाए। नृत्य-कला का जन्म धार्मिक विधि के रूप में हुआ। जिन डायन-वैद्यों ने (विच-डाक्टरों ने) इसकी शुरूआत की थी, वे लगभग सभी अब मिट गए हैं लेकिन आज भी नृत्य समाज के सौंदर्यपूर्ण मनोरंजन का एक हिस्सा है। आज केवल पौधों की बढ़त के लिए ही संगीत की जरूरत नहीं है। लिखते समय भी मैं ढोल की आवाज टॉम-टॉम की आदिम लय का आनंद ले सकता हूं। आज मध्य-रात्रि के समय प्राचीन श्लोकों का पाठ



अच्छी फसल पाने के लिए नहीं किया जाता, लेकिन दूध वाले, फैक्ट्री मजदूर, घरेलू नौकरी वाले, रोजमर्रा की मेहनत से राहत पाने के लिए यह करते हैं। मूर्तिकला का मतलब सिर्फ इतिहास-पूर्व कालीन ग्रोटो (गुफाओं) के रहस्य या ब्रिटिश संग्रहालयों में रखी और अब पूजी न जाने वाली गुफाओं की मूर्तिकला के नमूनों की प्रशंसा भर नहीं है।

चार-शतकों पहले जिस वर्ग ने उसे जन्म दिया उस वर्ग की आज की ह्रासोंमुख स्थिति से बंधे रहना विज्ञान के लिए जरूरी नहीं है। किसी विशिष्ट वर्ग की दासता से मुक्ति वैज्ञानिक की सबसे बड़ी जरूरत है। बल्कि जब बैक्टीरिया, अणुविषयक, मनोवैज्ञानिक या अन्य युद्ध-संबंधी बड़े कामों में उसे झोंके जाने के बजाय मानव कल्याण के



लिए उपयोग में लाए जाने के योजना-पूर्ण प्रयास किए जाएंगे, तभी वैज्ञानिक को यह मुक्ति मिल सकती है। इकट्ठा करना, भंडारण, अपने खाद्य को बढ़ाना, पशुओं को पालतू बनाना, हवा-पानी-बिजली और परमाणु की नाभिकीय ऊर्जा को वश में करना आदि मानव को पशु की श्रेणी से ऊपर उठाने की परंपरा का वह अग्रणी है। लेकिन, अगर वह वैज्ञानिक तरीके से अनाज उगाकर, दुनिया भर के करोड़ों भूखों को अनदेखा कर, उसे समंदर में डुबोने जैसी सोच रखने वाले की चाकरी करता है, और अगर उसे लगता है कि दुनिया की आबादी हद से ज्यादा बढ़ गई है और अणुबम एक वरदान है जिससे उसका खुद का आराम स्थायी बनता है तो वह विपरीत दिशा में आगे बढ़ रहा है। वह ऐसे स्तर पर जीता है जिसे कोई पशु भी कभी हासिल नहीं कर सकता और जो डायन-वैद्य के स्तर से भी नीचे वाला स्तर है।

आखिरकार, विज्ञान अनिवार्यता का विश्लेषण कैसे करता है? आमतौर पर विज्ञान के दो भेद माने जाते हैं– अचूक और विवरणात्मक– जो उसके गाणितीय सिद्धांत पर आधारित होने या न होने पर निर्भर करते हैं। अब यह भेद मिट गया है क्योंकि अब जीवन संबंधी विज्ञानों को अचूक संख्यासूचक अनुमानों की जरूरत महसूस होने लगी है जबकि भौतिक और रसायन विज्ञान की खोज के अनुसार स्वतंत्र कणों के स्तर पर सौरमंडल की गतिविधियों की तरह ही यथार्थ अनुमान संभव नहीं, यह स्पष्ट हो रहा है। विज्ञान के इन दो अंगों ने जो नई गणितीय तकनीक पाई है वह संभावनाओं के सिद्धांत पर आधारित है, जैसे कि होनी चाहिए। अंतिम विश्लेषण में विज्ञान अपनी गतिविधियों का स्थान बदलता है।

ऐसे में यह आपत्ति दर्ज की जा सकती है कि जब खगोल-विज्ञान से ग्रह या तारों में बदलाव नहीं आता तो फिर उसे प्रयोगात्मक विज्ञान क्यों नहीं कहा जाता? खगोलीय पिंडों के स्थानों में आने वाले बदलावों के निरीक्षण की वजह से ही पहले ज्योतिष को विज्ञान माना गया था। इससे आगे प्रगति केवल तभी संभव हुई जब खगोलविद् तक पहुंचने वाली रोशनी टेलिस्कोपों में इकट्ठी की जाने लगी। स्पेक्ट्रोग्राफ से गुजारकर उनकी निरंतरता को तोड़ा गया, या ध्रुवणमापी (पोलरीमीटर) के सहारे उसे मोड़ा गया। प्रयोगशालाओं में धातुओं की भाप पर किए गए समांतर परीक्षणों से तारों की अंदरूनी बनावट के बारे में निष्कर्ष निकाले गए। बदलावों के बिना विज्ञान नहीं।

इसे अगर स्वीकार कर लिया जाए तो हमारी पूछताछ लगभग पूरी हो रही है। आज के पूंजीपति समाज में वैज्ञानिक को अगर लगता है कि उसे दरकिनार किया जा रहा है या उसे परिसीमित किया जा रहा है, तो उसका कारण है– वह जिस वर्ग की सेवा में लगा है उस वर्ग को समाजवादी बदलावों से लगने वाला डर– जिसने अब तक दुनिया के बहुत बड़े हिस्से को अपने घेरे में ले लिया है। शांत, निष्पक्ष या आवेगहीन रहते हुए, ये बदलाव अपेक्षित हैं या नहीं, इस बारे में चर्चा नहीं की जा सकती और न ही इस विषय का कोई वैज्ञानिक ढंग से

मान्य स्वतंत्र हल निकल सकता है। एक मात्र परीक्षण यह हो सकता है कि इन दोनों व्यवस्थाओं के बीच **शांतिपूर्ण स्पर्धा होने** दें। देखें कि कौन-सी व्यवस्था अपने ही भार से ध्वस्त होती है और कौन-सी व्यवस्था अपने ही अंतर्गत विरोधाभासों का शिकार होती है। लेकिन जो वैज्ञानिक यह कहता है, तो उसकी नौकरी छिन जाती है।

समाज को बदलना, वैज्ञानिक जांच-पड़ताल का रुख समाज की नींव की तरफ मोड़ना, बहुत कठिन काम है। क्या समाज में वर्ग जरूरी है? खासकर, बुर्जुआ की सोच अब क्या है? लेकिन अगर उसके देश पर किसी छोटे वर्ग का शासन हुआ तो वैज्ञानिक को आज की इसी बड़ी समस्या को समझने ही नहीं दिया जाता। शायद भारत जैसे जनतांत्रिक देश में- जहां पूंजीपतिवर्ग खुद एक नया वर्ग है, वहां ऐसे संकट पर तुरंत ध्यान नहीं दिया जा सकता।

लेकिन यह सही नहीं है क्योंकि जिस तरह इस नए वर्ग ने भाप पर चलने वाली गाड़ी या कार का आविष्कार नहीं किया है, उसी तरह अपने विज्ञान का विकास भी इस वर्ग ने खुद नहीं किया है। बढ़िया मशीनें जिस तरह आयात की गईं, उसी तरह अपनी जरूरत का विज्ञान भी उन्होंने बना-बनाया आयात किया है। अपने लिए उपयोगी कोई भी राजनीतिक विचारधारा का आयात करने के लिए भी वे तैयार हैं।

इसका मतलब है कि, यूरोप में जैसा मध्यकाल से आधुनिक युग तक आते-आते बदलाव और विकास का सैंकड़ों वर्षों का इतिहास रहा है, वैसा बदलाव और विकास भारत में केवल कुछेक दशकों में ही आने की हमें उम्मीद करनी होगी, हालांकि भारत के रहनुमा पूंजीपतिवर्ग ने अपने को औपनिवेशिक गुलामी की मानसिकता से मुक्त नहीं किया है। ●